आप देखेंगे कि यथार्थ का यहा कई तरह से उद्‌घाटन होता है।

24.5 भाषा शैली - व्यंग्य का सटीक प्रयोग

सबसे पहले हम वर्णन की भाषा को ही लें तो देखते हैं कि उनमें कुछ अवधारणात्मक शब्दों का प्रयोग किया गया है। तथा सारी वीभत्सता को एक-एक ऐक्शन या कार्य-चित्र में उभारा गया रहै - जैसे कि यह कहना कि धर्मराज लाखों वर्षों से असंख्य आदमियों को कर्म और सिफ़ारिश के आधार पर स्वर्ग या नरक में निवास स्थान 'अलॉट ' करते आ रहे थे। यहाँ साफ है कि धर्मराज एक दफ्तर के बड़े बाबू या ज्यादा से ज्यादा अधिकारी प्रतीत होते हैं 'सिफारिश ' और 'अलॉटमेंट ' से उनकी स्थिति नौकरशाही के यथार्थ को पूरी तरह व्यंजित करती है। एक दफ्तर का सीन देखिए और धर्मराज का लोभ देखिए- दोनों बराबर। हू-बहू जो हालत क्लर्क की होती है वही चित्रगुप्त की। हम देखते हैं कि "चित्रगुप्त बार-बार चश्मा पोंछ, बार-बार **थूक से पन्ने पलट**, रजिस्टर पर रजिस्टर देख रहे हैं।" यहाँ दिव्यता का नामोनिशान नहीं है।

यथार्थ की दूसरी प्रस्तुति यह है कि यथार्थ को सीधे-सीधे सूचनापरक सूत्रों में ढाला गया है। ये कलात्मक निष्कर्ष के रूप में हैं। जैसे चित्रगुप्त धर्मराज को सूचित करते हुए कहते हैं- "महाराज, आजकल पृथ्वी पर इस प्रकार का व्यापार बहुत चलता है। लोग दोस्तों को कुछ चीज़ भेजते हैं और उसे रास्ते में ही रेलवे वाले उड़ा लेते हैं। हौज़री के पार्सलों के मोज़े रेलवे अफ़सर पहनते हैं। मालगाड़ी के डब्बे के डब्बे रास्ते में कट जाते हैं। एक बात और हो रही है। राजनैतिक दलों के नेता विरोधी नेता को उड़ाकर बन्द कर देते हैं। कहीं भोला राम के जीव को भी तो किसी विरोधी ने मरने के बाद दुर्गति करने के लिए नहीं उड़ा दिया।"

क्या ये केवल तथ्यों का उल्लेख है? या निष्कर्षों का कलात्मक रूपान्तरण। पूरे-पूरे क्षेत्र की प्रकृति इन निष्कर्षों में समाहित है। जैसे क्लर्क का थूक से पन्ना पलटना या रेलवेवालों द्वारा माल उड़ाना।

यथार्थ की तीसरी प्रस्तुति यह है कि पृथ्वी तल की सूचनाएं ऊपर भेजने की जगह पर लोक में ही मृत्युलोक की छटा दिखलाई जायें जैसे कि नारद जी धर्मराज से पूछते हैं कि क्या नरक में निवास-स्थान की समस्या अभी हल नहीं हुई। तो धर्मराज ने कहा वह समस्या तो कभी की हल हो गयी। नरक में पिछले सालों में बड़े गुणी कारीगर आये हैं। कई इमारतों के ठेकेदार हैं, जिन्होंने पूरे पैसे लेकर रद्दी इमारतें बनायीं। बड़े-बड़े इंजीनियर भी आ गये हैं, जिन्होंने ठेकेदारों से मिलकर पंचवर्षीय योजनाओं का पैसा खाया। ओवर सियर हैं, जिन्होंने उन मज़दूरों की हाज़िरी भर कर पैसा हड़पा, जो कभी काम पर गये ही नहीं। इन्होंने बहुत जल्दी नरक में कई इमारतें तान दी हैं।"

पारस्परिक संवाद की भाषा में भी यथार्थ का ही दबाव और प्रभाव यहाँ दिखाई देता है। अर्थात् धर्मराज या चित्रगुप्त या नारद कोई तत्सम शब्दावली का प्रयोग नहीं करते। व्यंग्य में भी नहीं। लिहाजा वातावरण 'दैवी ' न बनकर लौकिक ही बना रहता है। यही कारण है कि यथार्थ की तीव्रता यहा विद्यमान है। उसकी आँच में पिघलकर जो सौंदर्य-प्रतिमा यहाँ ढल रही है, वह कैसे ढलती फिर? यमदूत को देखते ही जब चित्रगुप्त चिल्लाते हैं- "अरे तू कहाँ रहा इतने दिन?" तो यमदूत कहता है कि "आज तक मैंने धोखा नहीं खाया था, पर भोलाराम का जीव मुझे चकमा दे गया।" तब धर्मराज क्रोध से बोले-

'मूर्ख! जीवों को लाते-लाते तू बूढ़ा हो गया, फिर भी मामूली बूढ़े आदमी के जीव ने तुझे चकमा दे दिया।'

यह वही भाषा है जो किसी भी दफ्तर में सुनी जा सकती है। इस तरह हमारे अपने युग का वातावरण यहाँ साक्षात विद्यमान हो जाता है। एकदम जीवंत। ऐतिहासिक-पौराणिक दृश्य में तत्सम भाषा के प्रयोग से यह न होता। धर्मराज ऑफिस सुपरिंटेंडेंट की तरह कहते हैं, चित्र गुप्त से - 'तुम्हारी भी रिटायर होने की उम्र आ गयी।' इंजीनियर, ओवरसियर, ठेकेदार, इमारत, रद्दी, पैसा खाना वगैरह शब्द हमारे यथार्थ की ही सशक्त अभिव्यक्ति करते हैं। संवादों की अत्यंत संप्रेषणीय भाषा के साथ ही स्वयं लेखक द्वारा प्रयुक्त वर्णन की भाषा का तालमेल इतना बेहतरीन है कि व्यंग्य की शक्ति उभर कर सामने आ जाती है। जैसे-

'नारद भोलाराम का मकान पहचान गये।' या यह कहना कि' वहाँ से चलकर नारद सरकारी दफ्तर पहुँचे।' या 'नारद बड़े साहब के कमरे में पहुँचे।' वगैरह वाक्यों को देखा जा सकता है। परसाई की विशेषता यह है कि केवल आर्थिक, राजनीतिक या सामाजिक कोई एक परिस्थिति या दृश्य चुनकर वे एक ही रचना में कितने ही क्षेत्रों में व्याप्त नीचताओं पर प्रहार करते हैं। उनकी व्यंग्य की तलवार कभी म्यान में नहीं रहती। हाथ हमेशा मूठ पर ही रहता है। उनके परिवार से भेंट करने पर नारद ने यह पता लगाने की कोशिश की कि भोलाराम का जीव कहाँ लगा हो सकता है। वे पूछने लगे 'माँ, यह तो बताओ कि यहाँ किसी से उनका विशेष प्रेम था, जिसमें उनका जी लगा हो।'

पत्नी बोली 'लगाव तो महाराज बाल-बच्चों से ही होता है 'नारद जी ने कहाँ' नहीं, परिवार के बाहर भी हो सकता है। मेरा मतलब है किसी स्त्री -' स्पष्ट है यह भाषा, यह संभावना, यह प्रश्न नारद के द्वारा पूछे जाने पर कितना व्यंजना परक हो उठता है। व्यंजना न हो तो व्यंग्य पैदा कहाँ से हो? साथ ही समाज की जो मर्मभेदिनी पकड़ परसाई दिखाते हैं, वह कितनी महत्वपूर्ण है। नारद के ऐसा कहने पर स्त्री ने गुर्राकर नारदकी ओर देखा। बोली, 'हर कुछ मत बको महाराज तुम साधु हो उचक्के नहीं हो। जिन्दगी भर उन्होंने किसी दूसरी स्त्री को आंख उठाकर नहीं देखा।' नारद इस पर हँसकर बोले- 'हाँ, तुम्हारा यह सोचना ठीक है। यही हर अच्छी गृहस्थी का आधार है।'

यहाँ व्यंग्य कहाँ है? यह तो एक गम्भीर कथन भी हो सकता है। और अभिधापरक वक्तव्य भी हो सकता है अगर सिर्फ 'हँसकर' शब्द इसमें से निकाल दिया जाये। लेखक का कौशल यह है कि वह सिर्फ इन तीन शब्दों से ही लक्ष्य प्राप्त कर लेता है कि 'नारद हँसकर बोले'। अन्यत्र भी सामाजिक यथार्थ की पकड़ का प्रमाण परसाई इसी रूप में देते हैं कि एक दो अवधारणात्मक शब्द से ही पूरे सत्य का उद्‌घाटन हो जाता है। जब स्त्री उनसे आग्रह करती है कि 'महाराज, आप तो साधु हैं, सिद्ध पुरुष हैं। कुछ ऐसा नहीं कर सकते कि उनकी रुकी हुई पेंशन मिल जाये। इन बच्चों का पेट कुछ दिन भर जाये।' इस पर नारद को दया आ गयी। वे कहने लगे 'साधुओं को कौन मानता है ? मेरा यहाँ कोई मठ तो है नहीं।' यानी यहाँ मृत्युलोक. में काम तभी होता है जब कोई मठ हो। साधु का अर्थ यहाँ कितना बदल गया है। यहाँ आज के साधुओं में और पूराने सच्चे साधुओं में स्पष्ट विसंगति दिखाई देती है।

पूरी रचना इस कदर कसी हुई है कि व्यंग्य की मार साँस नहीं लेने देती। लेकिन कला का हाथ कहीं भी यथार्थ छोड़ता नहीं। यह महारत तभी हासिल हो सकती है जब जीवन अनुभव और अध्ययन में गहरी पैठ हो। भाषा की चुस्ती और सटीकता यहाँ देखते ही

बनती है। नारद ने पूछा- "उस पर इन्कम टैक्स तो बकाया नहीं था? हो सकता है, उन लोगों ने रोक लिया हो।" तो चित्रगुप्त ने कहा, "इन्कम होती तो टैक्स होता। भूखमरा था।" यहाँ भुखमरे से अधिक सटीक कोई अन्य शब्द हो ही नहीं सकता। लोक प्रचलित अत्यंत सशक्त व्यंजनापरक मुहावरा!

यह व्यंजना भी देशज होती है। जो शब्द आध्यात्मिक मामलों में व्यंग्य पैदा करते हैं वे सामाजिक, राजनीतिक मामलों में नहीं करते। लेकिन कुशल रचनाकार उनके अत्यंत दृष्टि संपन्न प्रयोग कर सकता है। उदाहरण के लिए मन्दिर शब्द को लें, जिसके भाव से सभी परिचित हैं। - नारद बड़े साहब के कमरे में पहूँचे। बाहर चपरासी ऊँघ रहा था। इसलिए उन्हें किसी ने छेड़ा नहीं। बिना 'विज़िटिंग कॉर्ड ' के आया देख साहब बड़े नाराज़ हुए। बोले, "इसे कोई मन्दिर-वन्दिर समझ लिया है क्या? धड़घड़ाते हुए चले आये। चिट क्यों नहीं भेजी?"

यहाँ मन्दिर और दफ्तर के अलग-अलग 'नियमों ' से व्यंग्य उत्पन्न होता है। क्योंकि यहाँ तो बिना 'वज़न ' रखे कोई दरख्वास्त आगे ही नहीं बढ़ती। यानी दुनियादारी का मामला है तथा भाव यह है कि मन्दिर वाली पूजा तो यहाँ चलती नहीं। यहाँ की अपनी पूजा है।

अब इसी मन्दिर शब्द का परसाई दूसरे अर्थ में प्रयोग करते हैं।

साहब बोले- "आप हैं वैरागी। दफ्तरों के रीति-रिवाज नहीं जानते। भई, यह भी एक मन्दिर है। यहाँ भी दान-पुण्य करना पड़ता है। यहाँ बिना चढ़ावे के कोई प्रार्थना स्वीकार नहीं की जाती।"

भाषा चाहे संवाद की हो चाहे वर्णन की चपरासी की हो या साहब की, साधु की हो या दुनियादार की, कहीं कोई 'गढ़न ' नहीं है। सहज प्रवाही। जीवंत जीवन की ऊर्जा और संप्रेषण की कला की एक रूपता यहाँ देखते ही बनती है। नकली भाषा तो नकली पात्रों को ही शोभा देती है। ज़िन्दगी से कटे हुए महज़ किताबी कीड़े उस सत्वहीन भाषा का प्रयोग करते हैं। जीवंत भाषा की साधना एकांत में नहीं की जा सकती। इसे तो जनता के बीच से ही अर्जित किया जाता है। अनुभवों से निचोड़ा जाता है और दृष्टि की सान पर चढ़ाकर पैना किया जाता है।

भाषा दृष्टि की ही अभिव्यक्ति है। एक यथार्थवादी दृष्टि ही यथार्थपरक भाषा का प्रयोग कर सकती है। जो दृष्टि जितनी ही समाज विरोधी होगी उसकी भाषा उतनी ही संकेतपरक और गुह्य होगी। क्योंकि यहाँ पतनशील समाज का पोस्टमार्टम लेखक का लक्ष्य है, लिहाज़ा सृजन शैली की दृष्टि से यथार्थवाद मात्र से काम नहीं चलता। उसकी प्रकृति को भी देखना होता है। जहां तक यथार्थ का प्रश्न है तो आलोचनात्मक यथार्थवाद ही सुसंगत सृजनशील विधि होगी। स्पष्ट है कि व्यंग्य के लिए यह विधि सर्वाधिक उपयुक्त है। क्योंकि व्यंग्य जीवन की आलोचना ही तो है। परसाई व्यंग्य के उपयोग द्वारा जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त करते है।

24.5 सारांश

इस प्रकार हम पाते हैं कि 'भोलाराम का जीव ' प्रकारान्तर से नहीं, कलात्मक रूप से कहानी के माध्यम से समाज की तीव्र आलोचना है। स्वतंत्रता मिले हुए कोई अरसा भी

नहीं गुज़रा था कि मूल्यों में गिरावट आ गयी। ढाँचा चरमराने लगा। व्यवस्था भंग हो गयी। और भ्रष्टाचार का बोलबाला हो गया। इस सबको मदद मिली पुरानी पिछड़ी हुई पुराणपंथी चेतना से, अवैज्ञानिकता से और झूठी संस्कृति से। जिस धर्म और संस्कृति में सुन्दर व्यवस्था को स्थापित करने की, उसका विकास करने की क्षमता नहीं होती वह शोषक-उत्पीड़क वर्ग के हाथों में हथियार बन जाती है। उससे वे जनता में तरह-तरह के भ्रम फैलाते हैं। परसाई ने अपनी जनता को केंद्र में रखा, उसे नायक बनाया, उसकी दुर्दशा का खुला चित्रण किया। धारदार भाषा में अपनी अन्तर्वस्तु को प्रस्तुत किया। भ्रष्ट नौकरशाही की निर्लज्ज पराकाष्ठा को दर्शाया इस कहानी के द्वारा अपने पाठकों को एक नये सौंदर्य बोध की पहचान करायी। उनका व्यक्तित्व, लेखक स्वरूप, व्यंग्य के बारे में उनकी मान्यताएँ और पाठकों के प्रति सीधा संबोधन का संश्लिष्ट रूप है यह कहानी।

24.7 प्रश्न/अभ्यास

1. व्यंग्य की सामाजिक भूमिका निर्धारित कीजिए।
2. विसंगति, क्या व्यंग्य की आधार सामग्री है?
3. परसाई के व्यंग्य संबंधी दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए।
4. 'भोलाराम का जीव ' भ्रष्ट नौकरशाही की चरम परम्परा का पर्दाफाश करती है इस कथा के माध्यम से कहानी की समीक्षा करें।
5. भाषा एवं शिल्प की दृष्टि से 'भोलाराम का जीव' की समीक्षा करें।

कुछ उपयोगी पुस्तके

1. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिकाः मैनेजर पाण्डेय : हरियाणा साहित्य अकादमी चण्डीगढ़
2. आँखन देखी : सम्पादक कमला प्रसाद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
3. परसाई रचनावली भाग - एक एवं भाग - छह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
4. 'साम्य ' का 'परसाई विशेषांक ' : संपादक-विजयगुप्त, शीतलावार्ड, अम्बिकापुर, म.प्र.